तुम्हारे जाते ही
ताँत की तरह तन गये मेरे दोनों हाथ
वह जमीन अभी गरम थी
जहाँ तुम्हारे पाँव

उस ऊष्मा को
अपने भीतर धारण कर
हवा की लहरों के साथ मैं जा रहा था
उस गंध की गली में
जो तुम्हारे द्वारा बनी थी
और आकाश जैसी घनी थी

जहाँ-जहाँ पड़े थे तुम्हारे पाँव
वहाँ-वहाँ आलते में उतर आये थे
असंख्य चमकते हुए तारे
हारे हुए शरीर को
फूल-जैसे ढो रहे थे सारे-के-सारे बेचारे

तुमसे बात करते करते
मैं मोतियों को चुन रहा था
हमारी निष्कपट आवाज़ का मौन चुपके से
आकाश, केवल ~~चुपके से~~ सुन रहा था

पेड़ की पत्तियों की तरह
जगमगा रही थीं तुम्हारी आँखें
इन्द्र के उपवन से लाए हुए पुष्प रंगों का इन्द्रधनुष
रख दिया मैंने
अधरों पर तुम्हारे
और चूमने लगा
प्यार के उद्वेलों का पवित्र चुंबन
डबडबाती झील की लहरों के सहारे

सुनो,
जब स्वाती की बूँद बँसवारी में आती है
जब कहीं कोई नदी डबडबाती है
तो मुझे तुम्हारी आँखों में उतरे हुए
बेचैन समंदर की याद आती है

जब भी उसकी लहरें कभी
फूट कर बहीं हैं
मैंने धारा के एक एक मोती को
अपने हाथों से चुना है
और उनकी ऊष्मा में
तुम्हारे अंदर की ध्वनियों को
बहुत नजदीक से सुना है

और भी उपाय हैं शुभम्!
सावन के झमाझम बरसते आकाश में
टूट टूट कर पृथ्वी पर गिरते
और उसकी अनन्त प्यास बुझाते बादलों में देखूँगा तुम्हें

देखूँगा तुम्हें
चिड़िया की चोंच में दबे दाने या
पत्तियों के बंदनवारों में टँगे वर्षा के मोतियों में

मैं देखूँगा
इन्द्रधनुष के सात रंगों में फैली तुम्हारी कोमलकांत देह को

सावन के मेले में
तुम अभिषेक करोगी भीतर के शिव का
और जब निकलोगी मंदिर के बाहर सरागाती घुप्प अंधेरे में
तो मैं प्रवेश कर जाऊँगा अंधेरे में
और लपेट लूँगा उसे अपने चारों ओर झीनी
जिससे तुम सूरज झीनीचे प्रकाश से नहा सको

मैं जाऊँगा तुम्हारे मित्रों के पास
पीपल, गुलदावदी, बेला, शीशम, पलाश, सिंदु और
सबके पास
और माँग लाऊँगा तुम्हें

जानता हूँ
वे नहीं देना चाहेंगे तुम्हें
कैसे छोड़ना चाहेंगे वे अपनी हरीतिमा, गंध, रंग, चंचलता
और जीने का उल्लास

इसलिए
उन्हें फिर से रोपूँगा अपने भीतर
और मित्रों के साथ-साथ पा लूँगा तुम्हें
तुम साक्षात देखती रहोगी
मेरा उल्लास
जो झरने की तरह बहता हुआ
गिरि-कंदराओं-वनों को पार करता, तोड़ता, दौड़ता
बढ़ रहा है तुम्हारी ओर
तुम्हें छूने, भिगोने और अपनी लहरों में लपेट लेने के लिए

और क्या उपाय है, शुभम्?

तुमने बढ़ा दिया अपना एक हाथ
उनके लिए
जो कुसमय काट ले गये थे बहुत पहले ।

☐ [illegible] दो

कृष्ण ने कहा था
मैं जीवित रहूँगा अश्वत्थ की घनता में
मुझे पाने के लिए
उसके पास आना होगा।

सचेत हो
देखती रहीं सदियाँ
उसकी चपल चंचलता में जुड़ाने
कोई नहीं आया
कभी नहीं आया

उसके पास बादल थे, किरणें थीं
गाते हुए पक्षी थे
कामधेनुएँ थीं हंस का मुकुट था
भोर थी, शाम थी
अमावस्या थी पूर्णिमा थी
कृष्ण की गरिमा थी

दोपहरी नहीं थी वहाँ
और सब छाया से बच रहे थे
अपनी भी छाया कहाँ थी उनके पास ?

पक्षी की तरह
वह उठा लेता था सूरज को
अपने विशाल पंखों पर
बिछा देता पत्तों का बिछौना
थके हारे छौनों के लिए

लेकिन वहाँ कोई नहीं आया
सब आने की बात करते थे
लेकिन कृष्ण से डरते थे

जो आये
वे पत्तों को उतार
निर्वस्त्र कर देना चाहते थे उसे
सोख लेना चाहते थे
कंधे पर सोये बादलों का सारा जल

तुम गये
पहली बार अँकवार में भरने उसे

वह खिलखिलाता हुआ
तुम्हारी रग-रग में बहने लगा
अपनी कहने लगा
तुम्हारी सुनने लगा

भर दिया आँचल में तुम्हारे
रसीले बादलों का घुमड़ना, रात भर की चाँदनी
ओस की बूँदें
धूप की मोला
और पहना दिया चाँदी का सरोपा ।

□ ~~[illegible]~~ मौन

तुम्हारे अंकुरित मौन में
समायी थी
पृथ्वी के नाभि-चक्र से जन्मी
बावन अक्षरों के सान पर चढ़ी वर्णमाला
गौरांग बाहों में उठाये
हरियर हवा के सूत में महकती
चन्द्र-ललित हँस की माला

पक्षी ले जाते
हवा के रक्तवाही कोटरों में
अंधेरे को कुचलते
दूध की धारा बहाते
तुम चले जाते कंगूरों को भेदते
संधियों से झाँकते
धराशायी करते दंभ के थाले में खड़े
गर्वीले दुर्ग को

पक्षी ले जाते
शिखर की ऊँचाइयों पर
वज्र-जैसे वक्ष को अपनी जड़ों से भेदते
सजे रहते मुकुट बन
किरणों से चमकते भाल पर

पक्षी ले जाते
नदी के कटते अड़ार में
नृत्य की सुरीली भंगिमाओं
और हवा में झूलती अपनी जड़ों के सहारे
तुम उतर जाते भँवर में
नील सरी की टूटती लहरों को बचाने

अभिशप्त, टूटे, भग्न खण्डहरों में
प्रेतात्माओं के मध्य
छतों की झाझर-दीवारों पर टिका कर पाँव
तुम बनाते
छाया की छतनार छत
श्वेत किरणों की तीलियों से
प्यार का पिंजरा बनाते
लाल-काले पक्षियों के साथ

धधकती धूप में जलती
ढेर-सारी मृतात्माएँ
धूप-बत्ती की तरह चरणों पर तुम्हारे
कण्ठ में लटके
प्रेत के उस घण्ट से

धार फूटती मुक्ति की
धुँए की धार बाँहों में समेटे
चले जाते
उन्हें संध्या-सरोवर में सिराने

मरी हुई इस बस्ती में
लौट रहा जीवन अब धीरे-धीरे

→

विस्फोटित पत्थर झँपते पर-पर
गर्भ से फूट रहा अंकुर
जल में कमल-सा मन

सारी सरहदों को तोड़ते
नदी-सागर-पर्वत हर जगह हर कहीं
धूप के सारे परगनों को
गहरी-गुफा में घेरते

छायाभास-से नूतन नगर को
स्वर्ण-मेखला हाथों में उठाये
खींच लाते
विकल किसान की कामना के
अनन्त आकाश की
शोक-छाया ।

→

[illegible]
[illegible]
देवरिया-274001

-चार

□ प्यार

जब वे काट कर ले जा रहे थे
तुम्हारा सिर
तब तुमने कुछ नहीं कहा

अपने धड़ को गमले की तरह खोखला कर
प्रतीक्षा करते रहे पक्षियों की
जो आ रहे थे तुम्हें रोपने तुम्हारे ही धड़ में

हवा ने भर दी थी भुरभुरी मुलायम मिट्टी
आकाश ने दे दिया था जल
खर-पतवार भरे हुए थे
उर्वर खाद बनने के लिए

पूरी मजबूती से
पैर अब भी टिके हुए थे पृथ्वी पर
और पृथ्वी तुम्हारे उगने की प्रतीक्षा कर रही थी
तुम्हारे ही धड़ में

एक गोल टुकड़ा था
जो धधक रहा था चारों ओर
और बैलों वाली लड़की
ढूँढ़ रही थी उस नन्हीं चिड़िया को
जो लेकर उड़ गयी थी उसकी आँखें

हरे पत्तों के दोने में
छिपी थीं आँखें
पत्ते, पक्षी के पैरों में धीरे-धीरे
खोल रहे थे आँखें

जिनसे आदमी को देखा जा सकता था
बैलों को हाँका जा सकता था
गोंदों से भरी जा सकती थी गदोली
सुनी जा सकती थी
शाखाओं पर रेंगते लाल चींटों की कदमताल

भीतर और बाहर
और भी असंख्य योनियाँ थीं
जो पृथ्वी के ठण्डी होने की प्रतीक्षा कर रही थीं
और अपने ही कबंध में
तुम्हें उगते हुए देखना चाहती थीं

वे हवा की तरह लहक सकती थीं
आकाश की तरह फैलते
और जल की तरह बहते हुए
आग की तरह
कभी भी दहक सकती थीं

→

इन सबके लिए
पृथ्वी का होना जरूरी था
और पृथ्वी थी नहीं, आग थी
जो चराचर में फैली हुई थी
भयंकर और प्रचण्ड

उस दावानल में उतर कर
तुम्हीं बचा सकते थे पृथ्वी को
क्योंकि तुम्हीं को नहीं ढूँढ़नी थी
अपने खड़े होने की जमीन

हरे-हरे हाथों से बादलों का फंदा बाँध
तुम उतर गये
उस दहकती हुई आग में

आग न तुम्हें जला सकती थी
न सुखा सकती थी
तुम कहीं-भी जन्म ले सकते थे
अपनी-ही कोख से

तुम्हारे पास न रसीले फल थे
न पीले पनीले फूल
न थाले, न जल, न रोपने वाले मजबूत हाथ
न माली, न खाद
न किसी सामर्थ्य का साथ

शिरा-शिरा में बह रहा था
झरने की तरह उछलता हुआ जल
पत्तों की अँजुरी में
भरी हुई थी कृतज्ञ अश्रुपूर्ण हवा
किसी धूप-घायल पर
बरसने को बेचैन

लेकिन वहाँ आ सकते थे वही
जिनका न घर था, न द्वार
जो बेघर थे
धरती का कागज़ी जरूरी टुकड़ा भी
नहीं था जिनके पास

बिना पोषक-तत्त्व के
धूल में जो धीरे-धीरे बड़े हुए थे
और धरती से पहाड़ तक
चौपाल से अड़ार तक
दहकती हुई आग में
कमर तक खड़े हुए थे
देखते हुए अपने सम्पूर्ण अवसान का सौन्दर्य

इस प्रतीक्षा में
कि पृथ्वी ठण्डी होगी
तुम फिर उगोगे अपने को-ही फाड़ कर

फिर शुरू होगा
सामूहिक संवाद
हवा, जल और धधकती हुई
पृथ्वी के मध्य।

देवरिया खास
देवरिया-274001.

□□

□□ मणिकर्णिका पर ज्ञानेन्द्रपति

□ अरुणेश नीरन

मणिकर्णिका पर हरे भरे हो
पुष्प विभोर बैठे

काल की आदि अनन्त गंगा पर तैरता
एक अमृत तत्व
जो इस पापविनाशिनी के उद्गम पर है
सामने वर्तमान
और भविष्य के विसर्जन में भी।

माझियों के कुल गोत पूछते
सीढ़ियों पर बैठ नत नयन सश्रद्ध
निराला को बाँचते
पाताल-कूप में झाँकते मित्रों को झँकाते
चतुर्भुजी शिव की हर भुजा का
कला-सिन्दूर माथे पर लगाते

कविता की मौन ढँकी मौनी
नाव की तरह लहरों में उतारते
हर आकुल आकृति के चतुर्दिक
शब्दों की नादमयी तरलों नचा
छबीली भोर की कोमल करुण हवा से
माझियों का सुख दुःख कातते

उतर आयी अब साँझ सूनी
अधपके दिन की अंतिम गली में
निश्चल ओम के निश्छल हाथ थामे

उतरती रात के भय-तले
सूर्यास्त के जलजाल में ढेर सारी
मेघ-मछलियाँ सेवार-काई
चिरायँध गंध में डूबी सत्य समिधा

मुर्दों के इस दमकते गर्वीले गाँव में
चटखती हड्डियों के मध्य
गीत जीवन का गुनगुनाते
विखंडित आकाश में शब्द की पदचाप सुनते
आकाश बनते ज्ञानेन्द्रपति।

□□

१४ दिसम्बर, '९६

□ हम

धरती और आकाश की तरह
बहुत दूर हूँ
बहुत बहुत दूरी है

जहाँ से पृथ्वी समाप्त होती है
आकाश शुरू होता है वहाँ
चारो ओर से मुक्त रहता है
आकाश ही आकाश
देता रहता है मुक्त होकर
जल-जीवन अंधेरा प्रकाश
प्रकाश है तो धरती है
धरती है तो हम हैं
जहाँ हैं जितने हैं
ज़्यादा हैं या कम हैं !
हम हैं
तो धरती है आकाश है
जल-जीवन अंधेरा है प्रकाश है
यह सच है हमारा
कि हम पृथ्वी और आकाश दोनों से बड़े हैं

हममें होकर ही धरती पाती है
सहने की शक्ति
नदी को लहरों का संगीत
वन पाता है पत्तों का वैभव
पर्वत को मिलती है पत्थर की दृढ़ता
झरने का उल्लास

इसलिए इस तेज़ हवा में भी
हम पूरी मजबूती से खड़े हैं
हम हवा और जंगल
दोनों-से बड़े हैं !